

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 7: कृष्ण का उद्धव को उपदेश

19 September 2026



संसार से अपने प्रस्थान की पूर्वसंध्या पर, भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रिय भक्त उद्धव को अपना महान् उपदेश आरम्भ करते हैं — उन्हें वैराग्य, समदृष्टि तथा आत्मा में शरण का आह्वान करते हुए, और इस मार्ग को एक परिव्राजक अवधूत की प्राचीन कथा से स्पष्ट करते हुए, जिसने अपने चारों ओर के संसार में चौबीस गुरु पाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। पिछले अध्याय में, देवगण ने श्रीकृष्ण से अपने धाम लौटने की प्रार्थना की, यदुगण प्रभास को प्रस्थान करने लगे, और उद्धव समीप आकर प्रार्थना करने लगे कि वे भगवान् से कभी पृथक् न हों। अब भगवान् उस प्रार्थना का उत्तर एक गम्भीर उपदेश के आरम्भ से देते हैं। वे उद्धव को आसक्ति के बन्धनों से मुक्त होकर समभाव से पृथ्वी पर विचरने तथा सर्वत्र एकमेव आत्म-तत्त्व का दर्शन करने का उपदेश देते हैं। जब उद्धव स्वीकार करते हैं कि ऐसा वैराग्य कितना कठिन है और मार्गदर्शन की याचना करते हैं, तब भगवान् एक सुन्दर प्राचीन कथा सुनाते हैं — राजा यदु तथा एक शान्त परिव्राजक अवधूत का संवाद, जिसने प्रकृति के प्रत्येक रूप तथा प्राणी में अपने लिए कोई-न-कोई शिक्षा खोज ली थी। यह अध्याय उद्धव-गीता नामक महान् उपदेश का द्वार खोलता है, और हमें अवधूत के चौबीस गुरुओं में से प्रथम आठ देता है, पृथ्वी से लेकर कपोत तक।

अध्याय को जानकारो

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 7 (सप्तम प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: भगवान् कृष्ण उद्धव को उपदेश देते हैं
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, उद्धव को उपदेश देते हुए; भगवान् की कथा के भीतर, अवधूत ब्राह्मण राजा यदु को उत्तर देते हुए; समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; कथा के भीतर, राजा यदु; तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: द्वारका, भगवान् के प्रस्थान की पूर्वसंध्या पर; कथा के भीतर, राजा यदु तथा एक परिव्राजक अवधूत का प्राचीन मिलन
- केन्द्रीय विषय: भगवान् का वैराग्य तथा समदृष्टि का आह्वान, आत्मा में शरण, तथा चौबीस गुरुओं की कथा का आरम्भ — प्रथम आठ गुरु, पृथ्वी से कपोत तक
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 7, श्लोक 1-74
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 6 में, देवगण द्वारका आकर श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं और उनसे अपने दिव्य धाम लौटने की प्रार्थना करते हैं; भगवान् स्वीकार करते हैं, यदुगण को पवित्र स्थल प्रभास की ओर निर्देशित करते हैं, और उनका समर्पित सेवक उद्धव एकान्त में समीप आकर उनसे पृथक् न होने की प्रार्थना करता है। यह अध्याय भगवान् का प्रेममय उत्तर है — उनके अन्तिम तथा महानतम उपदेश का आरम्भ, जो प्रस्थान की पूर्वसंध्या पर उद्धव से कहा गया।

भगवान् का वैराग्य का आह्वान

भगवान् ने उद्धव से स्पष्ट कहा कि जब वे संसार छोड़ देंगे, तब कलियुग पूर्णतः आ जाएगा और लोग अधार्मिक मार्गों के प्रति अनुरक्त होंगे; उद्धव को नहीं रुकना चाहिए, अपितु कुटुम्बियों के प्रति समस्त आसक्ति त्यागकर, अपने मन को पूर्णतः भगवान् पर एकाग्र करके, समान दृष्टि से सबको देखते हुए पृथ्वी पर विचरना चाहिए। जो कुछ भी मन, वाणी, नेत्रों या कानों से ग्रहण किया जाता है, भगवान् ने कहा, वह मन की ही रचना है, अतः क्षणभंगुर तथा मिथ्या है। चंचल मन विविधता के भ्रम में गिरता है, और उससे भले-बुरे का भाव उठता है, और उससे कर्तव्य एवं निषेध का समस्त जाल। अतः, मन तथा इन्द्रियों को वश में कर, उद्धव इस समस्त संसार को आत्मा में प्रक्षिप्त देखें, और अपनी आत्मा को परमेश्वर में स्थित देखें। जो समस्त प्राणियों का मित्र बनता है, शान्ति से पूर्ण, ब्रह्माण्ड को भगवान् के साथ एक देखता है, वह पुनः कभी दुःख नहीं भोगता (श्लोक 1-12)।

उद्धव को मार्गदर्शन की प्रार्थना

यह सुनकर उद्धव भगवान् के समक्ष साष्टांग गिरे और एक निष्कपट हृदय से बोले। इन्द्रिय-सुख का ऐसा त्याग, उन्होंने कहा, भोग में आसक्त जनों के लिए प्रायः असम्भव है, और जो भगवान् के भक्त नहीं हैं उनके लिए और भी अधिक। “मैं अज्ञानी हूँ,” उन्होंने स्वीकार किया, “इस शरीर तथा सन्तान में आसक्त, ‘मैं’ तथा ‘मेरा’ की धारणाओं में डूबा हुआ। मुझे, अपने सेवक को, उपदेश दीजिए, जिससे मैं वह वैराग्य सहज ही प्राप्त कर सकूँ जो आपने सिखाया है।” उन्हें भगवान् के अतिरिक्त कोई नहीं दिखा, देवताओं में भी नहीं, जो आत्मा के सत्य को वैसे प्रकट कर सके जैसे भगवान् कर सकते हैं; और इसलिए, अपने मन को संसार से विमुख कर तथा दुःखों से पीड़ित होकर, उन्होंने केवल भगवान् की शरण ली — नारायण, समस्त प्राणियों के मित्र, नित्य, अनन्त तथा सर्वज्ञ (श्लोक 13-18)।

मानव देह, सबसे प्रिय

भगवान् ने उत्तर दिया कि जो संसार के वास्तविक स्वरूप का ईमानदारी से अन्वेषण करते हैं, वे अपने ही प्रयत्न से स्वयं को ऊपर उठा सकते हैं और तृष्णा से मुक्त हो सकते हैं; क्योंकि आत्मा ही अपना मार्गदर्शक है, और विशेषकर मनुष्य, प्रत्यक्ष अनुभव तथा अनुमान से, अपने कल्याण का साधन कर सकता है। असंख्य जीव-रूपों में, भगवान् ने कहा, मानव देह उन्हें सबसे प्रिय है, क्योंकि इसी में सजग जन परमेश्वर को पाते हैं। इसे स्पष्ट करने के लिए, उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई: शक्तिशाली तथा विवेकी राजा यदु और एक युवा अवधूत — उच्चतम कोटि के एक परिव्राजक — के बीच का संवाद, जो ज्ञान से पूर्ण होते हुए भी अस्वच्छ शरीर से निर्भय विचरते थे, मानो नितान्त निश्चिन्त हों (श्लोक 19-25)।

राजा यदु तथा अवधूत

अवधूत को इतना विद्वान् किन्तु इतना नितान्त मुक्त देखकर, धर्म के ज्ञाता राजा यदु ने श्रद्धापूर्वक उनसे प्रश्न किया। निष्क्रिय रहते हुए भी उन्होंने ऐसी तीक्ष्ण प्रज्ञा कैसे पाई? मनुष्य सामान्यतः धर्म, धन, भोग तथा आत्म-अन्वेषण भी दीर्घायु, यश तथा सौभाग्य की इच्छा से ही करते हैं — किन्तु यह ब्राह्मण, बलवान्, विद्वान् तथा वाक्पटु होते हुए भी, कुछ नहीं करते, कुछ नहीं चाहते, और काम एवं लोभ की दावाग्नि में जलते लोगों के मध्य उस अग्नि से अस्पृष्ट रहते हैं, जैसे गंगा के शीतल जल में खड़ा हाथी। यदु ने पूछा, उनके मन में स्थित उस आनन्द का स्रोत क्या है? ब्राह्मण ने कृपापूर्वक उत्तर दिया।

श्रीब्राह्मण उवाच

सन्ति मे गुरवो राजन् बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ।

यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह तान् शृणु ॥ ३२ ॥

śrī-brāhmaṇa uvāca santi me guravo rājan bahavo buddhy-upāśritāḥ yato buddhim upādāya mukto 'tāmīha tān śṛṇu

अर्थ: ब्राह्मण ने कहा: हे राजन्, मेरे अनेक गुरु हैं, जिन्हें मैंने अपने विवेक से ग्रहण किया; उनसे ज्ञान पाकर मैं संसार में मुक्त होकर विचरता हूँ। उनके विषय में सुनिए। (स्कन्ध 11, अध्याय 7, श्लोक 32)



बुद्धिमान् राजा यदु परित्राजक अवधूत से श्रद्धापूर्वक प्रश्न करते हैं, और वे उत्तर देते हैं कि उन्होंने अपने चारों ओर के संसार में अनेक गुरुओं से सीखा है (श्लोक 32)।

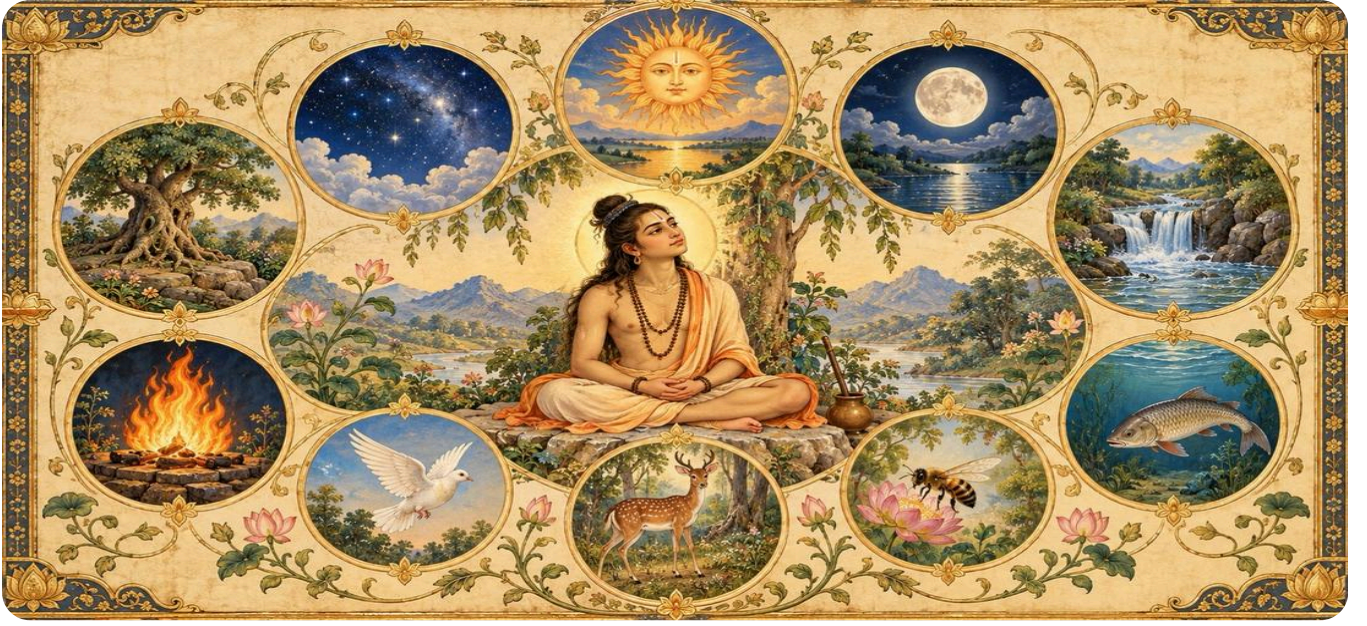
चौबीस गुरु

तब ब्राह्मण ने उन गुरुओं के नाम बताए जिन्हें उन्होंने चुना था — कुल चौबीस, जो तत्त्वों, आकाशीय ज्योतियों तथा संसार के जीवों से लिए गए थे।

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ।
 कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद् गजः ॥ ३३ ॥
 मधुहाहरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः ।
 कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥
 एते मे गुरवो राजन् चतुर्विंशतिराश्रिताः ।
 शिक्षा वृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥

*pṛthivī vāyur ākāśam āpo 'gniś candramā raviḥ kapoto 'jagaraḥ sindhuḥ pataṅgo madhukṛd
 gajaḥ madhu-hā hariṇo mīnaḥ piṅgalā kuraro 'rbhakaḥ kumārī śara-kṛt sarpa ūṛṇanābhiḥ
 supeśakṛt ete me guravo rājan catur-vimśatir āśritāḥ śikṣā vṛttibhir eteṣām anvaśikṣam
 ihātmanah*

अर्थ: पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा तथा सूर्य; कपोत, अजगर, समुद्र, पतंग, मधुमक्खी तथा हाथी; मधु-संग्राहक, हरिण, मछली, वेश्या पिंगला, कुरर पक्षी तथा शिशु; कुमारी, बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी तथा भृंग — ये चौबीस, हे राजन्, मैंने अपने गुरु स्वीकार किए हैं, और इनके आचरण से मैंने इस जीवन में अपने कल्याण के लिए आवश्यक सब कुछ सीखा है। (स्कन्ध 11, अध्याय 7, श्लोक 33-35)



अवधूत अपने चौबीस गुरुओं के नाम बताते हैं — तत्त्व, आकाशीय ज्योतियाँ, तथा पृथ्वी, वायु एवं जल के जीव — जिनके आचरण से उन्होंने अपने कल्याण के लिए आवश्यक सब कुछ सीखा (श्लोक 33-35)।

वे बताएँगे, उन्होंने कहा, कि उन्होंने प्रत्येक से क्या सीखा, और कैसे।

पृथ्वी, वायु तथा आकाश से शिक्षा

पृथ्वी से ब्राह्मण ने सहनशीलता सीखी — दैव के वश में अन्यो द्वारा उत्पीड़ित होने पर भी अविचल रहने का व्रत, अपने धर्ममार्ग से कभी विचलित न होना।

भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ।

तद् विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥

bhūtair ākramyamāṇo 'pi dhīro daiva-vaśānugaiḥ tad vidvān na calen mārgād anvaśikṣam kṣiter vratam

अर्थ: दैव के वश में चलने वाले प्राणियों द्वारा उत्पीड़ित होने पर भी, यह जानकर धीर तथा विवेकी अपने मार्ग से विचलित नहीं होते — यह व्रत मैंने पृथ्वी से सीखा। (स्कन्ध 11, अध्याय 7, श्लोक 37)

पर्वत से, जो पृथ्वी का ही एक रूप है, उन्होंने सीखा कि व्यक्ति के समस्त कार्य दूसरों की सेवा के लिए हों और उसका जन्म भी दूसरों के कल्याण के लिए है; और वृक्ष से, पृथ्वी के एक अन्य रूप से, दूसरों की इच्छा के प्रति पूर्ण समर्पण। वायु तथा प्राण से उन्होंने सीखा कि केवल जीवनयापन-मात्र से सन्तुष्ट रहें और इन्द्रियों को कभी न पोसें; और वायु के समान, विविध विषयों के मध्य विचरते हुए भी उनके गुण-दोष से अछूते रहते हुए, उनमें आसक्त न हों — जैसे वायु उन गन्धों से अस्पृष्ट रहती है जिन्हें वह वहन करती है। आकाश से उन्होंने सीखा कि सर्वव्यापी आत्मा, यद्यपि शरीरों में स्थित प्रतीत होती है, वस्तुतः समस्त सीमाओं तथा आसक्ति से मुक्त है — बदलते संसार से वैसे ही अछूती जैसे आकाश उन बादलों से अछूता रहता है जो उसमें से बहते हैं (श्लोक 38-43)।

जल तथा आग्ने से शिक्षा

जल से ब्राह्मण ने मुनि के गुण सीखे।

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ।

मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥

*svacchaḥ prakṛtiḥ snigdho mādhyas tīrtha-bhūr nṛṇām muniḥ punāty apāṁ mitram
ikṣopasparśa-kīrtanaiḥ*

अर्थ: स्वच्छ तथा निर्मल, स्वभाव से कोमल, मधुर तथा लोगों के लिए एक तीर्थ-सा, मुनि — जल के समान — अपने दर्शन, स्पर्श तथा अपने नाम के उच्चारण से दूसरों को पवित्र करता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 7, श्लोक 44)



जल से अवधूत ने मुनि का स्वभाव सीखा — स्वच्छ, कोमल तथा मधुर, जो दर्शन, स्पर्श तथा अपने नाम के उच्चारण मात्र से समीप आने वालों को पवित्र करता है (श्लोक 44)।

अग्नि से उन्होंने पवित्रता तथा अनासक्ति का एक और पाठ सीखा।

तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ।

सर्वभक्ष्योऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥

*tejasvī tapasā dīpto durdharṣodara-bhājanaḥ sarva-bhakṣyo 'pi yuktātmā nādatte malam agni-
vat*

अर्थ: तप से तेजस्वी तथा दीप्त, दुर्धर्ष, और अपने उदर के अतिरिक्त कुछ भी संचित न करने वाला, संयमी मुनि — अग्नि के समान — कोई मल ग्रहण नहीं करता, चाहे वह जो कुछ भी उसके पास आए उसे भक्षण कर ले। (स्कन्ध 11, अध्याय 7, श्लोक 45)



अग्नि से अवधूत ने सीखा कि तप से तेजस्वी रहते हुए भी किसी मल से अलिप्त रहें, चाहे वह जो कुछ भी अर्पित हो उसे ग्रहण कर ले (श्लोक 45)।

अग्नि के समान ही, मुनि कभी छिपा तथा कभी प्रकट रह सकता है, और जो उसे अर्पण करते हैं उनके भूत तथा भावी पापों को भस्म कर देता है। और जैसे अग्नि उस काष्ठ का रूप धारण कर लेती है जिसमें वह जलती है, वैसे ही सर्वव्यापी आत्मा, अपनी ही माया से बने श्रेष्ठ या निम्न शरीरों में प्रवेश कर, उनके रूप धारण किए प्रतीत होती है, फिर भी सदा स्वयं ही रहती है (श्लोक 46-47)।

चन्द्रमा तथा सूर्य से शिक्षा

चन्द्रमा से ब्राह्मण ने सीखा कि जन्म, वृद्धि तथा मृत्यु की अवस्थाएँ केवल शरीर की हैं, आत्मा की कभी नहीं — जैसे घटना-बढ़ना केवल चन्द्रमा की कलाओं में प्रतीत होता है, स्वयं चन्द्रमा में नहीं। और सूर्य से उन्होंने दो बातें सीखीं: कि योगी, जल खींचने तथा पुनः छोड़ने वाले सूर्य के समान, समय की आवश्यकता के अनुसार इन्द्रिय-विषयों को ग्रहण तथा त्याग कर सकता है, बिना किसी कर्म से बँधे; और कि, जैसे एक सूर्य अनेक जलपात्रों में प्रतिबिम्बित होकर अनेक प्रतीत होता है, वैसे ही एक ही आत्मा, अनेक शरीरों में प्रतिबिम्बित होकर, स्थूल बुद्धि वालों द्वारा अनेक समझी जाती है, यद्यपि वह सदा एक ही रहती है (श्लोक 48-51)।

कपोत — आसक्ति का संकट

तब ब्राह्मण एक लम्बे तथा अधिक मार्मिक पाठ पर आए, जो कपोत से सीखा गया था। उसका सार उन्होंने पहले कहा।

नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ।

कुर्वन् विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥

nāti-snehaḥ prasaṅgo vā kartavyaḥ kvāpi kenacit kurvan vindeta santāpaṁ kapota iva dīna-dhīḥ

अर्थ: किसी के प्रति, कहीं भी, अत्यधिक स्नेह या आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिए; जो ऐसा करता है वह मन से दीन होकर, कपोत के समान, सन्ताप को प्राप्त होता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 7, श्लोक 52)



कपोत से अवधूत ने अत्यधिक आसक्ति के विरुद्ध एक कोमल चेतावनी ली — उस कपोत की कथा जो अपने ही चंचल, स्नेहासक्त हृदय के कारण अपने परिवार सहित नष्ट हो गया (श्लोक 52)।

तब उन्होंने कथा सुनाई। एक कपोत ने वन के एक वृक्ष पर घोंसला बनाया था और वहाँ अपनी प्रिया के साथ वर्षों रहा। उनके हृदय प्रेम में बँधे थे, और उस युगल ने अपने बच्चों को अत्यन्त स्नेह से पाला, एक-दूसरे में तथा अपनी सन्तान में आनन्दित होते हुए। एक दिन, जब माता-पिता आहार की खोज में दूर थे, एक व्याध ने अपना जाल बिछाया और बच्चों को पकड़ लिया। लौटने पर, माता कपोती, अपने बच्चों के वियोग को सहन न कर सकी, जाल पर टूट पड़ी और पकड़ी गई; और नर कपोत, अपनी प्रिया तथा बच्चों को फँसा देख, विलाप करने लगा कि उसका सब कुछ खो गया, और शोक में स्वयं ही जाल में गिर पड़ा। समस्त परिवार को पकड़कर, व्याध सन्तुष्ट होकर घर लौट गया। इसी प्रकार, ब्राह्मण ने निष्कर्ष दिया, चंचल मन वाला कोई भी गृहस्थ, इन्द्रिय-सुखों में आसक्त तथा द्वन्द्वों में रमता हुआ, अपने से बँधे सब लोगों सहित सन्ताप को प्राप्त होता है — और बुद्धिमान् जन ऐसे व्यक्ति को उसी ऊँचाई से गिरा हुआ जानते हैं जिस पर वह चढ़ा था।

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।

गृहेषु खगवत् सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥

yaḥ prāpya mānuṣaṁ lokaṁ mukti-dvāram apāvṛtam gr̥heṣu khaga-vat saktas tam ārūḍha-cyutaṁ viduḥ

अर्थ: जो मानव देह — मुक्ति का एक खुला द्वार — प्राप्त कर, उस पक्षी के समान घर तथा परिवार में आसक्त रहता है, उसे बुद्धिमान् जन उस ऊँचाई से गिरा हुआ जानते हैं जिस पर वह पहले ही चढ़ चुका था। (स्कन्ध 11, अध्याय 7, श्लोक 74)

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. वैराग्य मन में आरम्भ होता है, केवल परिस्थिति में नहीं। उद्धव को भगवान् की प्रथम शिक्षा है आसक्ति को हटाना और मन को उन पर स्थिर करना, अनुभूत संसार को मन का ही क्षणभंगुर प्रक्षेपण देखते हुए (श्लोक 6-9)।
2. अपनी दुर्बलता का निष्कपट स्वीकार ही कृपा का द्वार है। उद्धव उस बल का ढोंग नहीं करते जो उनमें नहीं; वे अपनी आसक्ति स्वीकार करते हैं और शरण लेते हैं, और यही विनम्रता भगवान् के उपदेश को आकर्षित करती है (श्लोक 15-18)।
3. मानव जन्म सबसे मूल्यवान् है। समस्त जीव-रूपों में मानव देह भगवान् को सबसे प्रिय है, क्योंकि केवल इसी में सजग जन उन्हें पा सकते हैं — मुक्ति का एक द्वार जिसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए (श्लोक 22-23, 74)।
4. इच्छुक दृष्टि के लिए समस्त संसार एक गुरु हो सकता है। अवधूत ने अपने चारों ओर के तत्त्वों तथा जीवों में चौबीस गुरु पाए, सबसे ज्ञान सीखते हुए — जो खोजता है, उसके लिए प्रत्येक अनुभव शिक्षा देता है (श्लोक 32-36)।
5. संसार में रहो, उससे अछूते। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल तथा अग्नि से मुनि सहनशीलता, सन्तोष, अनासक्ति, पवित्रता तथा सब कुछ ग्रहण करके भी कुछ न रखने की कला सीखता है (श्लोक 37-47)।
6. अत्यधिक आसक्ति दुःख लाती है। कपोत की कोमल कथा चेतावनी देती है कि परिवार तथा भोग में स्नेहासक्त, चंचल आसक्ति दुःख की ओर ले जाती है — जबकि स्थिर, अनासक्त प्रेम हृदय को मुक्त रखता है (श्लोक 52-74)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस महान् उपदेश का आरम्भ जिस प्रकार होता है, उसमें एक गहरा आश्वासन है। भगवान् पूर्णता की माँग से आरम्भ नहीं करते; वे उद्धव की ईमानदारी को बाहर लाकर आरम्भ करते हैं। और उद्धव, जिन्होंने अभी-अभी भगवान् से कभी पृथक् न होने की प्रार्थना की, अब स्वीकार करते हैं कि वे शरीर तथा कुटुम्ब से कितने बँधे हैं, उस वैराग्य से कितने दूर जिसे अपनाने को कहा जा रहा है। यही आध्यात्मिक जीवन का सच्चा आरम्भ-बिन्दु है — बल का ढोंग नहीं, अपितु आवश्यकता का विनम्र स्वीकार। और भगवान् का उत्तर एक डाँट नहीं, अपितु एक कथा है, और कोमल: एक अवधूत का चित्र जो इतना मुक्त है कि वह मिट्टी के ढेले, एक नदी, एक ज्वाला, यहाँ तक कि एक शोकाकुल कपोत से भी सीख सकता है। सन्देश शान्तिपूर्वक मुक्तिदायी है। बुद्धिमान् बनने के लिए हमें किसी दुर्लभ परिस्थिति की आवश्यकता नहीं; समस्त सृष्टि हमें पहले से ही सिखा रही है, यदि हम केवल एक खुले तथा श्रद्धापूर्ण हृदय से देखें। पृथ्वी धैर्य सिखाती है, जल कोमलता, अग्नि पवित्रता, और कपोत का शोक हमें बिना चिपके प्रेम करना सिखाता है। संसार में वैसे रहना जैसे अवधूत रहे — सबके प्रति सजग, किसी में आसक्त नहीं, भीतर शान्त — स्वयं एक प्रकार की उपासना है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज अवधूत की देखने की रीति को अपनाइए। अपने चारों ओर के संसार में किसी एक साधारण वस्तु को चुनिए — एक वृक्ष, एक बहती धारा, खुला आकाश, एक छोटा जीव — और रुककर उससे वैसे सीखिए जैसे अवधूत ने सीखा। वृक्ष को निःस्वार्थ दान सिखाने दीजिए, जल को कोमलता तथा पवित्रता, आकाश को आसक्ति से मुक्ति। चिन्तन करते हुए, भगवान् के पावन नाम का कोमलता से जप कीजिए: “ॐ नमो

भगवते वासुदेवाय।” इस सरल अभ्यास में आप इस अध्याय की उसी शिक्षा का अनुसरण करते हैं — समस्त सृष्टि को भगवान् की स्मृति में बदलते हुए, और हृदय को, उस परिव्राजक मुनि के समान, संसार में रहते हुए भी उससे अछूता रहने का अभ्यास कराते हुए।

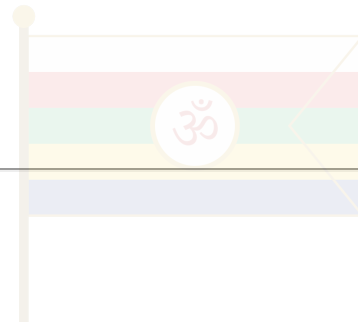
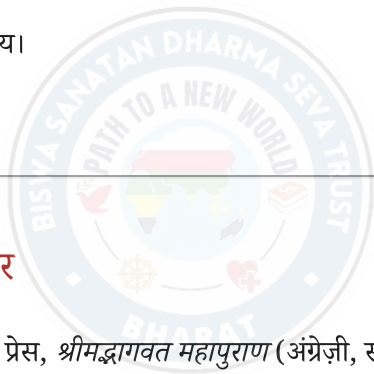
उपसंहार

एकादश स्कन्ध का सप्तम प्रवचन उद्धव-गीता का द्वार खोलता है, जो भगवान् का अन्तिम तथा सर्वाधिक अन्तरंग उपदेश है। श्रीकृष्ण उद्धव को आसक्ति त्यागने, समान मन से विचरने, और संसार को आत्मा में तथा आत्मा को अपने में देखने का आह्वान करते हैं। जब उद्धव विनम्रता से अपनी दुर्बलता स्वीकार करते हैं और शरण लेते हैं, तब भगवान् राजा यदु तथा एक परिव्राजक अवधूत की प्राचीन कथा से उत्तर देते हैं — एक ऐसी आत्मा जो इतनी मुक्त थी कि उसने संसार के तत्त्वों तथा जीवों को ही अपना गुरु बना लिया था। पृथ्वी से उसने सहनशीलता सीखी; वायु, आकाश, जल तथा अग्नि से सन्तोष, मुक्ति, पवित्रता तथा अनासक्ति; चन्द्रमा तथा सूर्य से आत्मा का अपरिवर्तनीय स्वरूप; और शोकाकुल कपोत से वह सन्ताप जो अत्यधिक आसक्ति लाती है। सबसे बढ़कर, यह अध्याय हमें स्मरण कराता है कि मानव जन्म मुक्ति का एक दुर्लभ तथा खुला द्वार है, जिसे आसक्ति से नहीं गँवाना चाहिए। इस प्रकार चौबीस गुरुओं का महान् उपदेश आरम्भ होता है, जिसे आगामी अध्याय पूर्ण करेंगे।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य प्रज्ञा हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, सप्तम प्रवचन, पृष्ठ 544–551।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एकल प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-7-krishna-uddhav-upadesh-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

